



" उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में बाल मनोविज्ञान"

प्रा. सिंधू खिलारे

हिंदी विभाग, उमा महाविद्यालय, पंढरपुर, जिला : सोलापुर ।

प्रस्तावना :

प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने एक क्रमबद्ध एवं संगठित कथा देने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। उन्होंने हिन्दी के पाठकों की अभिरुचि को तिलिस्मी उपन्यासों की गर्त से निकालकर शुद्ध साहित्यिक नींव पर स्थिर किया। उनकी कला, उनका आदर्शवाद, उनकी कल्पना और सौन्दर्यानुभूति और उनके चरित्र आदि मध्यवर्ग की जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं। व्यक्ति भावना में बंधकर हंसता, रोता और गाता है, निज संघर्ष में हारता-जीतता है। ऐसे व्यक्ति को सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही निज उपन्यासों में प्रतिष्ठापित किया है। हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान सम्बन्धी तत्त्व सर्वप्रथम प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही मिलते हैं। प्रेमचन्द शैलीकार न थे, साहित्यकार थे और वे भाषा नहीं लिखते थे, अपनी वेदना लिखते थे। इसी से पंडित से पहले जनता ने उन्हें अपनाया और आचार्य से पहले नागरिक ने उन्हें समझा। प्राणों का उत्सर्ग देकर उन्होंने भाषा और भारत को संस्कार दिया।¹

उपन्यास क्या है? यह साहित्य प्रेमी जानते हैं। बाल अर्थात् बालक वह भी परिचय का मोहताज नहीं है और मनोविज्ञान की परिभाषा बताने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। बालक के मन को समझने वाले विज्ञान को बालमनोविज्ञान कहते हैं। कलम के सिपाही प्रेमचन्द के उपन्यासों में बालक के मन को समझने का महती प्रयास किया है जोकि हमें यह सन्देश देता है कि उस बालक का विशेष ध्यान रखना चाहिए जो कल के समाज का सर्जक है। उसका समुचित विकास होने पर ही समाज का उज्ज्वल भविष्य निर्भर करता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में बाल मनोविज्ञान :

1. वरदान :

प्रेमचन्द रचित उपन्यास वरदान सन् १९०६ में प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुंचा। इस उपन्यास में बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी तथ्य स्वतः ही मुखर हो उठते हैं। बच्चे मन के राजा होते हैं। उन्हें सुख-दुःख से कुछ नहीं लेना-देना होता है। आर्थिक तंगी के कारण एक दिन मां सुदामा अपने छह वर्षीय बालक प्रताप को बुलाकर कहती है- 'बेटा! तनिक यहां आओ। कल से तुम्हारी मिठाई, दूध, घी सब बन्द हो जाएंगे। रोओगे तो नहीं? यह कहकर उसने बेटे को प्यार से गोद में बैठा लिया और उसके गुलाबी गालों का पसीना पोंछकर चुम्बन कर लिया। प्रताप, क्या कहा? कल से मिठाई बन्द होगी? क्यों? क्या हलवाई की दुकान पर मिठाई

नहीं है? सुदामा, मिठाई तो है, पर उसका रुपया कौन देगा? प्रताप, हम बड़े होंगे तो उसको बहुत-सा रुपया देंगे। चल, टप, टप, देख माँ कैसा तेज घोड़ा है।'२

बच्चों की बुद्धि अत्यन्त तीव्र होती है। उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर गलत नहीं देना चाहिए। वे सब समझते हैं। गलत उत्तर देने से उनका उत्तर देने वाले पर विश्वास उठ जाता है और फिर बालक कभी उन पर विश्वास नहीं करता। एक दिन बालक प्रताप अपनी बाल-सखी विरजन को कोई पुस्तक पढ़कर सुना रहा था और विरजन के पिता मुंशी जी आ जाते हैं। वे प्रताप को बुलाते हैं, यहां आओ, प्रताप! प्रताप धीरे-धीरे कुछ हिचकिचाता, सकुचाता समीप आया। मुंशी जी ने पितृवत् प्रेम से उसे गोद में बैठा लिया और पूछा- 'तुम अभी कौन सी किताब पढ़ रहे थे?' प्रताप बोलने को ही था कि विरजन बोल उठी- 'बाबा! अच्छी-अच्छी कहानियां थीं। क्यों, बाबा? क्या पहले चिट्ठियां भी हमारी भांति बातें करती थीं?' मुंशी जी मुस्कराकर बोले- 'हाँ! वे खुद बोलती थीं।' अभी उनके मुख से पूरी बात भी निकल नहीं पाई थी कि प्रताप, जिसका संकोच अब गायब हो चला था, बोला- 'नहीं विरजन, तुम्हें भुलाते हैं। ये कहानियां बनाई हुई हैं।' मुंशी जी इस निर्भीकता पूर्ण खण्डन पर खूब हंसे।३

बच्चे जिज्ञासु होते हैं और वह अपने मन में उठी जिज्ञासा को सब कुछ जानकर शान्त कर लेना चाहते हैं। बालिका विरजन सोचती है- रेल पर वह भी दो-तीन बार सवार हुई थी। परन्तु उसे आज तक यह ज्ञान न था कि उसे किसने बनाया और वह क्योंकर चलती है। दो बार उसने गुरुजी से यह प्रश्न किया था, परन्तु उन्होंने यही कहकर टाल दिया कि बच्चा, ईश्वर की महिमा अपरम्पार है। विरजन ने भी समझ लिया कि ईश्वर की महिमा कोई बड़ा भारी और बलवान घोड़ा है, जो इतनी गाड़ियों को सन-सन खींचे लिए जाता है। ४ बड़े जो कुछ बच्चों को बताते हैं वह उन्हीं पर विश्वास कर बैठते हैं। किन्तु जब उन्हें सही बात का पता लगता है तो उनका बड़ों पर से विश्वास उठ जाता है।

2. सेवासदन :

सन् १९१४ में प्रकाशित उपन्यास सेवासदन में यत्र-तत्र बाल मनोवैज्ञानिक तथ्य बिखरे पड़े हैं जोकि प्रेमचन्द के बाल मनोवैज्ञानिक अध्ययन की पुष्टि करते हैं। परिवार ही बच्चों की प्राथमिक पाठशाला होती है। अतः परिवार का दायित्व है कि वह उपयुक्त वातावरण तैयार करके बच्चों के पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करें क्योंकि बच्चों की समुचित देखभाल न होने के कारण उनमें सुविचारों का अभाव हो जाता है। सेवासदन का सदन माता-पिता के अतिशय लाड़-प्यार से बाल्यकाल में डीट, हटी और लड़ाका बन जाता है। यहां तक कि वह अपनी जरूरतों के लिए चोरी भी करने लगता है। वह आलस्य और उदण्डता की ओर उन्मुख होने लगता है। ऐसा क्यों है, क्योंकि परिवार में माँ-बाप उसका उचित ढंग से पालन-पोषण नहीं करते। बालक जब कोई अशुद्ध वस्तु छू लेता है तो वह अन्य बालकों को दौड़-दौड़कर छूना चाहता है, जिससे वे भी अपवित्र हो

जाएं।५

अतः स्पष्ट है कि बच्चे जब स्वयं गलती कर बैठते हैं तो स्वयं को अपमान से बचाने के लिए दूसरे पर अपना दोष लगाने का प्रयास करते हैं जिससे उसे अकेले अपमानित न होना पड़े। प्रेमचन्द कहते हैं- बालक जो अपने किसी सखा के खिलौने तोड़ डालने के बाद अपने ही घर में जाते डरता है।६

स्पष्ट है कि बालक अपने मित्र की किसी वस्तु को तोड़ देता है तो अपने घर जाते हुए डरता है- 'कि कहीं' घर पर डांट न पड़े। इसी प्रकार अन्यत्र प्रेमचन्द लिखते हैं- बालक 'मेहमान की लाई मिठाई को ललचाई हुई आंखों से देखता है, लेकिन माता के भय से निकालकर खा नहीं सकता।७

इस प्रकार बालक के सुलभ मन की अभिव्यक्ति करते हुए वह अपनी बाल मनोवैज्ञानिक बुद्धि का सहज ही परिचय दे देते हैं।

3. प्रेमाश्रम :

सन् १९१८ में प्रकाशित उपन्यास प्रेमाश्रम प्रकाश में आया। इसमें प्रेमचन्द कहते हैं-बाल्यावस्था के पश्चात् ऐसा समय आता है जब उदंडता की धुन सिर पर सवार हो जाती है। इसमें युवाकाल की सुनिश्चित इच्छा नहीं होती। उसकी जगह एक विशाल आशावादिता है जो दुर्लभ को सरल और असाध्य को मुँह का कौर समझती है।^{1८} प्रेमाश्रम के तेजशंकर और पदमशंकर ऐसे ही दुर्भाग्यशाली बच्चे हैं, जिन्हें माता-पिता का समुचित संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। घर की देखभाल के अभाव में उनकी सजीवता, उनकी अबाध्य कल्पना सुविचारों की ओर उन्मुख न होकर मिथ्या विश्वासों की ओर बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप वे चालीस दिन तक भैरव मन्त्र सिद्ध करने के भ्रम में सदा के लिए यह संसार त्याग देते हैं।

4. निर्मला :

सन् १९२३ में प्रकाशित उपन्यास निर्मला मूलतः दहेज-प्रथा की समस्या पर आधारित है। इसमें बालमनोविज्ञान सम्बन्धी तथ्य यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। दस वर्षीय कृष्णा को जब पता चलता है कि उसकी बहिन निर्मला का विवाह होने वाला है तब वह विवाह के बारे में सोचती है और ठीक-ठाक समझ न सकने के कारण डरती है। बच्चे ठीक-ठाक समझ न सकने के कारण दबू हो जाते हैं। बच्चे जिज्ञासु होते हैं और नई-नई बातें जानना चाहते हैं। जब नहीं जान पाते तो ऊटपटांग सोचकर अपनी जिज्ञासा को शान्त कर लेते हैं।^{1९}

बच्चे जिज्ञासु होते हैं। वे सब कुछ जानना चाहते हैं। इसके लिए कोई शर्त भी रखी जाये तो उसे पूर्ण करने में नहीं हिचकते। जैसे चन्दर, कृष्णा से घूमने चलने के लिए कहता है तो वह राजी हो जाती है, इसलिए कि चन्दर उसे शादी के बारे में बहुत कुछ बताएगा।^{2०}

बच्चों के अच्छे भविष्य के लिए बच्चों को माता-पिता का उचित संरक्षण और निर्देशन मिलना अति आवश्यक है, क्योंकि माता-पिता के प्रति आस्था समाप्त हो जाने पर बच्चा विध्वंसक एवं विरोधी बन जाता है। जियाराम तो विमाता तथा पिता पर आस्था खो चुका है। वह स्पष्ट कहता है कि उसके बड़े भाई मंसाराम की मृत्यु का कारण वे दोनों हैं।^{2१}

पारिवारिक जीवन में जब तक सामाजिक दोषों के कारण असंगतियां रहेंगी, बच्चों का स्वस्थ विकास नहीं हो सकता क्योंकि वे असंगतियां अनेक कुण्ठाओं को जन्म देती हैं। बचपन में आस्थाओं का टूटना व्यक्ति को विध्वंसक बना देता है। यहीं से अपराध प्रवृत्ति का अंकुर फूटता है।^{2२}

5. रंगभूमी :

सन् १९२४ में प्रकाशित उपन्यास रंगभूमि दो भागों में प्रकाशित हुआ था। एक अन्धे भिखारी की जमीन हथियाने के प्रयत्न में धनवानों की चालाकियां तथा कुछ वायावी प्रेम की कहानियों के आधार पर उपन्यास का कथानक गढ़ा गया है। इस उपन्यास के पात्र विनय और सोफिया का एक दूसरे के प्रति आकर्षण का कारण यौन-भावना ही नहीं अपितु मनोवैज्ञानिक भी है। अपनी माँ की कठोरता ने विनय के मन में ऐसी ग्रन्थि का निर्माण किया था कि वह हर नारी में अपनी माँ की कठोरता ही देखता था। यही बात सोफिया के घर में थी। अतः पहली बार विनय की विनयशीलता पर सोफी मुग्ध होती है और सोफी का मधुर व्यवहार विनय को जात-पात के बन्धन तोड़कर उससे विवाह करने के लिए विवश करता है। हॅपनर नामक मनोवैज्ञानिक ने ऐसे व्यक्तियों के विषय में लिखा है कि 'Some persons react to an early environmental influence by antagonism towards it...This is particularly evident in the case of a mother domination of her son, one son may rebel against his mothers ever attentiveness...and want a mate who reminds him very little of his own mother'.²³

6. कायकल्प :

सन् १९२८ में प्रकाशित उपन्यास कायाकल्प की नायिका मनोरमा तेरह वर्ष की है। उसे चक्रधर पढ़ाने आते हैं। बच्चों के मन में जो शंका होती है वे उसका समाधान चाहते हैं। यद्यपि बच्चे अपनी कल्पना-शक्ति से अपने मन में उत्पन्न जिज्ञासा को शान्त कर लेते हैं, किन्तु वे तब तक पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हो जाते जब तक कोई उनके द्वारा किए गए समाधान को अपने उत्तर द्वारा प्रमाणित नहीं कर देता। मनोरमा, चक्रधर से प्रश्न-रूप में अपने मन की जिज्ञासा कहती है। चक्रधर से तर्क-वितर्क करती है। वे उसकी जिज्ञासा का समाधान कर देते हैं। मनोरमा को उनके द्वारा किया गया समाधान अपने मनोनुकूल लगा तो उसका स्नेह अपने शिक्षक चक्रधर से अधिक हो गया। अब पढ़ने-लिखने से उसे विशेष रुचि हो गई। चक्रधर उसे जो काम करने को दे जाते, वह उसे अवश्य पूरा करती। पहले से आकर बैठ जाती और उनका इन्तजार करती। अब उसे उनसे अपने मन के भाव प्रकट करते हुए संकोच न होता। वह जानती थी कि कम से कम यहां उनका निरादर न होगा, उनकी हंसी न उड़ाई जाएगी। १४

प्रेमचन्द कहते हैं - "माताओं को चाहिए कि अपने पुत्रों को साहसी और वीर बनाएं। एक तो यहां लोग यों ही डरपोक होते हैं, उस पर घर वालों का प्रेम उनकी रही-सही हिम्मत भी हर लेता है।" १५

अतः स्पष्ट है कि माता-पिता को बच्चों में गुणों को प्रतिस्थापित करने के लिए न अधिक लाड़-प्यार करना चाहिए और न ही अधिक सख्ती बरतनी चाहिए। एक दिन रानी मां को रोते देखकर वह तलवार लेकर राजा को मारने के लिए उनके पास आता है। 'राजा-क्यों शंखधर, तलवार क्यों लाये हो? शंखधर तुमको मारेंगे। राजा-क्यों भाई मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? शंखधर-अम्मां लानी लोती है, तुमने उनको क्यों माला है?' १६

बालक जिस बहुत चाहता है उसे कष्ट होते नहीं देख सकता। वह इसके लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है और कष्ट देने वाले को मारना चाहता है। शंखधर को अपनी दादी निर्मला को पूजा करते देखकर उससे पूछने पर यह ज्ञात हो जाता है कि ईश्वर मनोकामना पूर्ण करते हैं। वह दादी की तरह पूजा करने लगता है। उसको पूजा करते देखकर पूछने पर आंखों में आंसू भरकर कहता है - "कुछ नहीं, मैं बाबूजी के जल्दी से लौट आने की प्रार्थना कर रहा था।" १७

बालक बड़ों का अनुकरण करता है। अनुकरण की प्रवृत्ति बच्चों के जीवन-विकास में बहुत महत्त्व रखती है। यह प्रवृत्ति वहीं तक ठीक रहती है, जहां तक बालक के स्वावलम्बी बनने में बाधक नहीं होती। बच्चों में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक होती है और वह हर बात का अनुकरण करने के लिए तत्पर रहते हैं। अतः बालक के आसपास अच्छा वातावरण है तो वह अच्छी बातें सीख जाता है और यदि दूषित है तो गन्दी बातें सीखता है। बालकों में अच्छी-अच्छी आदतें सहज अनुकरण की प्रवृत्ति द्वारा डाली जा सकती हैं और इसका बच्चों के जीवन में सुविकास के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

7. गबन :

सन् १९३० में प्रकाशित उपन्यास गबन में प्रेमचन्द जी ने वातावरण और संस्कारों का व्यक्तित्व निर्माण और अपराध में कितना महत्त्वपूर्ण सहयोग होता है, का सुन्दर चित्रण किया है। पारिवारिक संस्कार और वातावरण बालक के व्यक्तित्व-निर्माण में पूर्ण सहायक है। गबन उपन्यास का नायक रमानाथ का पतन मिथ्या अहंकार और प्रदर्शन-प्रिय स्वभाव के कारण ही हुआ। इसी प्रकार नायिका जालपा का आभूषण-प्रेम भी उसके दुःख का कारण है। इन दोनों को यह सब पारिवारिक वातावरण और संस्कारों से ही मिला। बच्चों का बचपन में जैसे वातावरण और संस्कारों में पालन-पोषण होता है, तदनु रूप ही उनका व्यक्तित्व ढलता है। माता-पिता को बालकों के संरक्षण के लिए घर का वातावरण भी बच्चों के विकास के अनुकूल रखना चाहिए जिससे उसका समुचित विकास हो सके।

8. कर्मभूमी :

सन् १९३२ में प्रकाशित उपन्यास कर्मभूमि के नायक अमरकान्त का बचपन पिता तथा विमाता के ही नियन्त्रण में बीता। उसे पिता एवं विमाता का प्यार नहीं मिलता। प्यार के अभाव में वह ढीठ बन जाता है और जीवन भर पिता एवं पत्नी से सामंजस्य नहीं रख पाता है। स्नेहाभाव के कारण उसका व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है। वह ऐसे हृदय की ओर दौड़ता है जो उसे प्यार करे। इसी कारण वह समस्त परिवार से सामंजस्य नहीं रख पाता और अन्ततः सकीना की ओर आकर्षित होकर उससे अवैध प्रेम करता है। १८ परिवार में शिशु संरक्षण का कार्य अत्यन्त गम्भीर है। थोड़ी सी असावधानी हो जाने से बालक का व्यक्तित्व बिगड़ सकता है। अतः अभिभावकों को प्रारम्भ से ही बालकों के प्रति सचेष्ट रहना चाहिए।

9. गोदान :

सन् १९३६ में प्रकाशित उपन्यास गोदान में कृषक-जीवन की विपत्ति-कथा संजोयी गई है। गोदान में यत्र-तत्र बाल-जीवन का चित्रण बाल-मनोविज्ञान के मूल तथ्यों को सहज ही समेटे हुए है। बच्चों में स्पर्धा की भावना होती है। इसी कारण वे दूसरे बच्चों की तुलना में अधिक अच्छा बनने का प्रयास करते हैं। बच्चों में इस स्पर्धा के दो पहलू हैं-एक तो बालक दूसरे बालक के साथ स्पर्धा की भावना रखता है किन्तु उसे हानि नहीं पहुंचाता अर्थात् उसकी स्पर्धा सकारात्मक होती है। दूसरा पहलू नकारात्मक है, जब बालक के मन में स्पर्धा के साथ-साथ ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो जाता है। ईर्ष्यायुक्त स्पर्धा बच्चे के विकास में बाधक होती है। जैसे आठ साल की बालिका रूपा बाप के साथ खाना खाने बैठती है तो सोना उसे ईर्ष्या से देखती है-“रूपा बाप की थाली में खाने बैठी। सोना ने उसे ईर्ष्या भरी आंखों से देखा, मानो कह रही थी, वाह रे दुलार।” १९

कभी-कभी बच्चे ईर्ष्यावश परस्पर स्पर्धा करने लगते हैं और स्वयं को छोटा नहीं होने देते और नहीं चाहते कि विरोधी बच्चे से हारें। जैसे सोना और रूपा में अपने-अपने नाम की महत्ता को लेकर स्पर्धा हो जाती है। २० बच्चों में उत्पन्न ईर्ष्या को अच्छी बातों से दमन कर देना चाहिए जिससे उनका मनोविकास समुचित ढंग से हो सके। रूपा होरी से कहती है कि सोना कहती है - "गाय आएगी, तो उसका गोबर मैं पाथूंगी। रूपा यह नहीं बरदाश्त कर सकती। सोना ऐसी कहां की रानी है कि सारा गोबर आप पाठ डाले। रूपा उससे किस बात में कम है? सोना रोटी पकाती है तो क्या रूपा बरतन नहीं मांजती? सोना पानी लाती है तो क्या रूपा कुंए पर रस्सी नहीं ले जाती?" पिता ने उसके भोले पन पर मुग्ध होकर कह दिया-नहीं गाय का गोबर तू पाथना। सोना गाय के पास आये तो भगा देना। पिता के कहने पर अपनी विजय का शुभ समाचार पराजिता सोना को सुनाने चली गयी।" २१

इस प्रसंग से स्पष्ट है कि बच्चे अपने को किसी भी बात में कम साबित नहीं होने देना चाहते। वे सदैव प्रत्येक बात में अपना अधिकार चाहते हैं। दूसरों से किसी भी बात में कम होने पर उन्हें दुःख होता है, उनके स्वाभिमान को ठेस लगती है। इसलिए उनमें योग्यता प्रदर्शन की भावना होती है। वे प्रत्येक बात में अपना प्रभुत्व चाहते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति को अभिव्यक्त होने का रास्ता मिले तो उनमें आत्मनिर्भर बनने का आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। इसके लिए समुचित वातावरण और उचित निर्देशन की नितान्त आवश्यकता है जिससे वह ईर्ष्यावश कुमार्ग या कुसंगति की ओर न बढ़ जाएं। प्रेमचन्द बच्चों के समुचित ढंग से पालन-पोषण के लिए सहमत थे। तभी तो गोदान की डॉक्टर मालती ग्रामीण स्त्रियों को सन्तान रक्षा और शिशु-पालन की बातें बताती है और औरतें मन लगाकर सुनती हैं। वह कहती है - "क्यों माता ने पुत्र को ऐसी शिक्षा नहीं दी कि वह माता की, स्त्री जाति की पूजा करता? इसलिए कि माता को यह शिक्षा देनी नहीं आती, इसलिए कि उसने अपने को इतना मिटाया कि उसका रूप ही बिगड़ गया, उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो गया।" २२

उस पर दुनिया झुनिया दो बच्चों की मां होकर बच्चे का पालन करना न जानती थी। मंगल दिक् करता तो उसे डांटती-कोसती। २३

प्रेमचन्द यह कहना चाहते हैं कि कुछ माताएं कई बच्चों को जन्म देकर भी बच्चों को पालना नहीं जानती। वे बाल-मनोविज्ञान से अनभिज्ञ होती हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द बच्चों के पालन-पोषण के लिए बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान होना माताओं के लिए आवश्यक समझते हैं।

निष्कर्ष :

अमर उपन्यासकार प्रेमचन्द में विशाल अनुभव, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, विराट प्रतिभा तथा मानव मन की थाह लानेवाली अन्तःदृष्टि थी किन्तु मनोविज्ञान की विचारधारा से परिचय न होने तथा भारतीय आदर्श की रक्षा का व्रत लेने से वे अपने उपन्यासों में पूर्ण बाल मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश नहीं कर पाए हैं फिर भी अनजाने में कलम के सिपाही ने जो बाल-मनोविज्ञान अभिव्यक्त किया है वह हिन्दी के बाल मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि के लिए पर्याप्त है, ऐसा मुझे लगता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. प्रेमचन्द स्मृति-प्र.सं., १९५९, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, बाह्य कवर, से।
२. वरदान : प्रेमचन्द छठा संस्करण, १९५९ दिसम्बर, पृ. १२।
३. -वरदान-पृ. १४।
४. -वरदान-पृ. १४-१५।
५. सेवासदन पृ. १२३।
६. सेवासदन पृ. २१९।
७. सेवासदन पृ. २६८।
८. प्रेमाश्रम पृ. ४०४.-४०५।
९. निर्मला पृ. ४।
१०. निर्मला पृ. ६।
११. निर्मला पृ. ३५-३६।
१२. हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय अध्ययन, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, डॉ. चण्डी प्रसाद जोशी, पृ. १६८
१३. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास-डॉ. धनराज मानधने, पृ. १३१।
१४. कायाकल्प पृ. १३।
१५. कायाकल्प पृ. १९१।
१६. कायाकल्प पृ. २७१।
१७. कायाकल्प पृ. २८।
१८. कर्मभूमि पृ. १०।
१९. गोदान पृ. १७।